भारतीय ग्राम पुनर्निर्माण में पंचायतीराज का प्रभाव (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ. नवीन कुमार*

पंचायती राज को स्थापित हुए अब काफी समय हो चुका है, और ग्रामीण समाज के किसी भी अध्येता के लिए यह जानना आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि इस नये परीक्षण का ग्रामीण जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में अनेक अध्ययन किये गये हैं। इनमें से कुछ प्रमुख अध्ययनों का सारांश हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।[1]

आन्ध्र प्रदेश के अध्ययन :- ह्यू ग्रे ने आन्ध्र प्रदेश में पंचायती राज का गहन अध्ययन किया और वे निम्न मुख्य निष्कर्षों पर पहुँचे[2]:-

(1) पंचायती राज के अन्तर्गत जिलाधीश का कार्य बदल रहा है लेकिन जिला अधिकारी जिला परिषद् के कार्यकारी अधिकारी नहीं है और पंचायती क्षेत्र समितियों के गुणों की तुलना में जिला परिषद् के अध्यक्ष की स्थिति काफी कमजोर है।

(2) त्रिस्तरीय व्यवस्था में वास्तविक सत्ता बीच के स्तर अर्थात् समिति के प्रमुख के पास है। उसके काम में बाधा डालने वाला जिलाधीश नहीं है और खण्ड विकास अधिकारी को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

(3) समितियों की सदस्यता के विश्लेषण से यह पता चलता है कि अभी भी उन पर प्रायः जमींदार जातियों का प्रभुत्व है। प्रबल जाति, अधिक भूमि, अधिक रुपया, अधिक शिक्षा, अभी भी राजनैतिक सफलता के लिए जरूरी है।

(4) पंचायती राज ने प्रतिद्वन्द्वी जमींदारों के राजनैतिक संघर्षों, उनकी जाति और राजनैतिक संघर्षों के लिए नया क्षेत्र जुटाया। उदाहरण के लिए, समिति का प्रमुख केवल समिति की जीप का ही प्रयोग नहीं करता बल्कि वह प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों का स्थानान्तरण कर दूसरों को उपकृत करने का साधन अपने हाथ में रखता है।

(5) सामुदायिक विकास की भांति पंचायती राज के लाभ भी गांव के जमींदारी वर्ग और सरकारी अधिकारियों के माध्यम से ही गांव वालों को पहुँचे हैं, क्योंकि इन वर्गों का सामाजिक आर्थिक और शैक्षणिक स्तर एक सा ही है।

(6) पंचायती राज ने राजनीति को ग्रामीण स्तर पर ला दिया है और सरकार को अधिक बोधगम्य बना दिया है। एक गांव वाले के शब्दों में तुम प्रमुख से बात कर सकते हो।" जैसे-जैसे निम्न जातियों में शिक्षित सदस्य शक्ति के स्रोतों पर पहुँच सकेंगे और उनका उपयोग कर सकेंगे जमींदार जातियों की परम्परागत सत्ता टूटने लगेगी।

***पी.एच.डी. समाजशास्त्र मगध विश्वविद्यालय बोध गया।**

(7) राजनैतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण का लक्ष्य बहुत अंशों में प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन सामुदायिक विकास के लिए लोगों में उत्साह जागृत करने के काम में अधिक सफलता नहीं मिली है। इसका अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि स्कूलों या सड़कों के लिए स्वीकृत बहुत सी रकमें जिनमें कि जनता से 50 प्रतिशत अंश देने की अपेक्षा की जाती है, अप्रयुक्त रह जाती है। जहां कुल 25 प्रतिशत अंशदान चाहिए वहाँ कुछ अधिक सफलता मिलती है। जब गांव वालों से पूछा जाता है कि, क्या वे पंचायती राज के हक में हैं, वे कहते हैं, हाँ, क्योंकि इससे गांव में अधिक रुपया आता है। गांव वाले अभी तक यह नहीं समझते कि राज्य उनका है। वह यही समझते हैं कि यह अभी भी जमींदारों का ही है। पंचायती राज ने एक ऐसा अखाड़ा प्रस्तुत किया है जिसमें कि जमींदार जातियों के सदस्य अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा के लिए लड़ सकते हैं।

(8) गांवों वालों की चुनाव में अभिरुचि बढ़ रही है और वे यह महसूस कर रहे हैं कि धर्म और कर्म में ही जीवन की इतिश्री नहीं है, बल्कि सामाजिक आयोजन एक वास्तविक संभावना है। वे वोट की शक्ति को पहचान रहे हैं।

(9) राजनैतिक दल, कम से कम बाहरी तौर पर, विभिन्न जातियों के सदस्यों के एक दूसरे के पास जाने और ऊँच-नीच के भेद को कम करने का काम कर रहे हैं।

(10) पंचायती राज की सबसे बड़ी समस्या है कि सामुदायिक विकास की योजनाओं पर निर्णय लेने में किस प्रकार सार्वजनिक सहयोग प्राप्त किया जाय। सामाजिक क्रान्ति एक लम्बी प्रक्रिया है। लेकिन एक बार शुरू होने पर यह अवश्य आगे बढ़ती रही है।

अन्य कुछ अध्ययन :- हाल में आन्ध्र प्रदेश के अलावा अन्य राज्यों में पंचायती राज के कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये। इनमें से छः को जार्ज जैकब ने एक स्थान पर संकलित किया है।[3]

जाति और नातेदारी का प्रभाव :- क्या पंचायती राज के प्रभावस्वरूप गांव की संस्थाओं पर जाति और नातेदारी का प्रभाव घट रहा है। इस सम्बन्ध में के.सी. पंचनदीकर और श्रीमती पंचनदीकर ने बड़ौदा के पास एक अध्ययन में बताया कि यहाँ कोरियों की बहुसंख्या थी।[4] इसके अलावा अनाविल और गोरा दो जमींदार जातियों की संख्या उनसे थोड़ा ही कम थी। पंचायती राज के सूत्रपात ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि नेता बनने के लिए अब एक जाति से अधिक जातियों के सहयोग की आवश्यकता प्रबल हो गई। इस प्रकार ईमानदार के महाराष्ट्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश नेताओं का रूख अब सामाजिक सद्भावना और प्रगति की ओर है। जब कि दो गांवों में नेतृत्व का झुकाव लोकतांत्रिक है, तो इसके विपरीत, अन्य दो गांवों में वह आर्थिक पारम्परिक है। यहाँ यह भी पता चलता है कि जहाँ पंचायतें

स्थापित हुए काफी समय, अर्थात् 10 साल से ज्यादा गुजर जाते हैं, वहाँ पंचायतें लोकतांत्रिक परिपक्वता की तरफ कदम बढ़ाते हैं। इसके अलावा, गांव के व्यक्तिगत नेतृत्व का भी अपना महत्व है। कुछ गांवों में स्वयं ऐसे नेता हैं जो अपने संस्कारों में प्रगतिशील हैं और निम्न वर्गों का अधिक से अधिक सक्रिय सहयोग चाहते हैं। आन्ध्र प्रदेश की समितियों में जाति का तथ्य महत्वपूर्ण था। पर फिर भी उन्होंने समिति के कार्यों को लोकतांत्रिक रीति से चलाने में रुकावट न डाली। राजस्थान के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हुई कि चुनाव में अभी भी जाति का बड़ा हाथ है पर पंचायती राज क्रमशः धीरे-धीरे जाति गुटों को शक्ति गुटों में रूपान्तरित कर रहा है और नये शक्ति गुट अवसर, परम्परागत परिवार और जाति के बन्धनों को काट रहे हैं। इस प्रकार यहाँ पर जाति के बजाय गुटबन्दी का अधिक जोर है।

राजनैतिक प्रभाव : पंचायती राज का सबसे बड़ा प्रभाव राजनैतिक पड़ा है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में राजनैतिक चेतना जागी है और स्थानीय नेता धीरे-धीरे उच्चतर स्तर पर अपने राजनैतिक गठबन्धन कर रहे हैं। खण्ड, क्षेत्र या पंचायत समिति स्तर पर यह गठबन्धन काफी मजबूत बन चुके हैं और इस स्तर पर प्रायः प्रधान या प्रमुख का चुनाव राजनैतिक दल के आधार पर होता है। इसका बुरा प्रभाव भी पड़ रहा है। राजस्थान में देखा गया कि राज्य मंत्री-मण्डल में हेर-फेर होने पर बहुत से पंचायती राज के नेताओं के विरुद्ध होने वाली जांच या तो रुक जाती है या एकदम शुरू हो जाती है। इसमें शक नहीं कि प्रधानों के राजनैतिक दलों से सम्बन्ध बन गये हैं, पर अभी उन्होंने कोई ठोस शक्ल अखत्यार नहीं की है। उनके सम्पर्क का आधार कोई राजनैतिक विचारधारा या प्रतिबद्धता नहीं है, बल्कि मुख्यतः आर्थिक लाभ के लिए सौदेबाजी है। यही कारण है कि ऐसे नेताओं की निष्ठायें अक्सर बदलती रहती है।

ग्राम स्तर पर राजनैतिक दलों का प्रभाव बहुत कम है। यदि गांव पंचायतों का ऊपरी स्तरों में कोई सीधा सम्पर्क न होता तब तो राजनैतिक दलों के प्रभाव का अभाव अच्छी बात थी। पर चूँकि वे पंचायती राज संस्थाओं द्वारा ऊपर से सम्बद्ध रहती है, इसलिए उनसे राजनीति को बाहर रखना कठिन है। अभी तक राजनैतिक दल स्वस्थ आधार पर अपने दलों को संगठित नहीं कर रहे हैं। इसके बजाय वे चुने हुए व्यक्तियों को ही घेरने का प्रयत्न करते हैं। समिति स्तर पर नेताओं को आर्थिक सहायता के लिए राज्य सरकार का मुंह जोहना होता है और यहाँ पर राजनैतिक दल ही समिति के प्रधान के बीच राजनैतिक सूत्र का काम करते हैं।

पंचायती राज संस्थाओं के सदस्य सहयोजित करने में भी राजनैतिक प्रभाव स्पष्ट दीखता है। राजस्थान के अध्ययन में भी यह देखा गया कि प्रधानों ने अपनी मत संख्या बढ़ाने के लिए अपने मददगारों को सहयोजित कर लिया।

मुख्य प्रश्न यह है कि पंचायती राज संस्थायें स्थानीय सरकार की इकाई हैं या राज्य सरकार की, जिन्हें कुछ विशिष्ट काम सौंप दिया गया है। चूंकि ये संस्थायें

कार्यकर्त्ता और वित्त के सम्बन्ध में राज्य सरकार पर अत्यन्त निर्भर है, इसलिए उनकी स्वायत्तता बहुत सीमित है। राजस्थान के अध्ययन में इस बात की सिफारिश की गई है कि पंचायती राज के विशिष्ट क्षेत्र को परिसीमित कर दिया जाय जिसमें कि पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका प्रमुख रहे। इससे हर बात के लिए राजकीय प्रशासन की ओर ताकने की प्रवृत्ति घटेगी।

मैसूर के अध्ययन में सदस्यों से यह पूछा गया कि वे क्यों राजनैतिक दलों में शामिल हुए।[7] पच्चीस सदस्यों ने कहा कि उनके मित्रों ने उन्हें दल में शामिल होने पर मजबूर किया। उनमें से तेईस कांग्रेसी थे। एक अनुसूचित जाति के सदस्य ने बताया कि उसे विकास अधिकारी ने कांग्रेस दल में होने के लिए प्रेरित किया, क्योंकि शासक दल होने के कारण उसे कांग्रेस दल से अनेक लाभ प्राप्त हो सकेंगे। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं का रुझान जब तक ऊपर की ओर है, राज्य सरकार का शासक दल उन्हें अपनी शक्ति मजबूत करने के लिए इस्तेमाल कर सकेगा। उसी के पास समिति के अध्यक्षों को देने के लिए कुछ होगा। इस प्रकार पंचायती राज संस्थायें शासक दल का ही एक हथियार बन सकती है। इसका यही प्रतिकार है कि सत्ता व्यक्तिगत रूप से प्रधान या प्रमुख में निहित न कर समस्त सदस्यों को सौंप दी जाय और इस बात का एक निश्चित और मध्य मापदण्ड निर्धारित किया जाय कि कौन पंचायत संस्था उसे दिये गये कार्यो को सुचारू रूप से संचालित कर रही है या नहीं।

संदर्भ सूची :

1. Hoffosommer and D.C. Dubey : A sociological study of Panchayati Raj, 1961.
2. Hugh Gray : 'The Problem' in Seminar Panchayati Raj Number, September, 1963
3. George Jacob : Readings on Panchayati Raj in India, 1967.
4. K.C. and J.N. Panchnadikar : 'Domestic' Structure and Adjustment in Panchayati Raj Bodies in George Jacob's Readings on Panchayati Raj in India, 1967.
5. Iqbal Narain and P.C. Mathur : 'Panchayati Raj in Rajasthan,' in George Jacob's Readings on Panchayati Raj in India, 1967.
6. B. Sarveswara Rao : 'Panchayat Samities' in George Jacob's Readings on Panchayati Raj in India, 1967.
7. K.S. Bhatt : 'Emerging Patterns of Leadership in Panchayati Raj set up in Mysore', In George Jacob's Readings on panchayati Raj in India, 1967